Note- Only First Question-Answer is compiled in Book- Prem Hai Dwar Prabhu Ka #3. Complete discourse is compiled in book- Jeewan Darshan #2.)

जीवन दर्शन

दूसरा प्रवचन

बीज में वृक्ष का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से प्रश्न कल की चर्चा के संबंध में इधर मेरे पास आए हैं। सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है: जीवन में सत्य को पाने की क्या जरूरत है? जीवन इतना छोटा है कि उसमें सत्य को पाने का श्रम क्यों उठाया जाए? बस पिक्चर देख कर और संगीत सुन कर जब बहुत ही आनंद उपलब्ध होता है, तो ऐसे ही जीवन को बिता देने में क्या भूल है?

महत्वपूर्ण प्रश्न है। अनेक लोगों के मन में यह विचार उठता है कि सत्य को पाने की जरूरत क्या है? और यह प्रश्न इसीलिए उठता है कि उन्हें इस बात का पता नहीं है कि सत्य और आनंद दो बातें नहीं हैं। सत्य उपलब्ध हो तो ही जीवन में आनंद उपलब्ध होता है। परमात्मा उपलब्ध हो तो ही जीवन में आनंद उपलब्ध होता है। आनंद, परमात्मा या सत्य एक ही बात को कहने के अलग-अलग तरीके हैं। तो इसको इस भांति न सोचें कि सत्य की क्या जरूरत है? इस भांति सोचें कि आनंद की क्या जरूरत है?

लेकिन आनंद की जरूरत तो पूछने वाले मित्र को भी मालूम पड़ती है। संगीत में और सिनेमा में उन्हें आनंद दिखाई पड़ता है। लेकिन यहां एक और दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है: दुख को भूल जाना आनंद नहीं है। संगीत और सिनेमा या उस तरह की और सारी व्यवस्थाएं केवल दुख को भुलाती हैं, आनंद को देती नहीं। शराब भी दुख को भुला देती है, संगीत भी, सिनेमा भी, सेक्स भी।

दुख को भूल जाना एक बात है, और आनंद को उपलब्ध कर लेना बिल्कुल दूसरी बात। एक आदमी दरिद्र है और अपनी दरिद्रता को भूल जाए, यह एक बात है; और वह समृद्ध हो जाए, यह बिल्कुल दूसरी। दुख को भूलने से सुख का भान पैदा होता है। सुख और आनंद इसीलिए अलग-अलग बातें हैं। सुख केवल दुख का विस्मरण है, फॉरगेटफुलनेस है। आनंद, आनंद किसी चीज की उपलब्धि है, किसी चीज का स्मरण है। आनंद पाजिटिव है, सुख निगेटिव है।

एक आदमी दुखी है। तो इस दुख से हटने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय यह है कि वह किसी चीज में इस भांति भूल जाए कि इस दुख की उसे याद न रहे। वह जाए और संगीत सुने। संगीत में इतना तन्मय हो जाए कि उसका चित्त दुख की तरफ न जाए, तो उतनी देर को दुख उसे भूला रहेगा। लेकिन इससे दुख मिटता नहीं है। संगीत से जैसे ही चित्त वापस लौटेगा, दुख अपनी पूरी ताकत से पुनः खड़ा हो जाएगा।

जितनी देर वह संगीत में अपने को भूले था, उतनी देर भी भीतर दुख बढ़ता जा रहा था। भीतर सरक रहा था, दुख और बड़ा हो रहा था। जैसे ही संगीत से मन हटेगा, दुख और भी दुगने वेग से सामने खड़ा हो जाएगा। फिर उसे भूलने की जरूरत पड़ेगी। तो शराब है, और दूसरे रास्ते हैं जिनसे हम अपने चित्त को बेहोश कर लें। ये बेहोशी आनंद नहीं है।

सच्चाई तो यह है जो आदमी जितना ज्यादा दुखी होता है, उतना ही स्वयं को भूलने के रास्ते खोजता है। दुख से ही यह एस्केप और पलायन निकालता है। दुख से ही भागने का और कहीं डूब जाने का, मूर्च्छित हो जाने की आकांक्षा पैदा होती है। आपको पता है, सुख से कभी कोई भागता है?

दुख से लोग भागते हैं। अगर आप यह कहते हैं कि जब मैं सिनेमा में बैठ जाता हूं तो बहुत सुख मिलता है, तो जब आप सिनेमा में नहीं होते होंगे तब क्या मिलता होगा? तब निश्चित ही दुख मिलता होगा। और सिनेमा में बैठ कर दुख मिट कैसे जाएगा? दुख की धारा तो भीतर सरकती रहेगी। जितने ज्यादा दुखी होंगे, उतना ही ज्यादा सिनेमा में ज्यादा सुख मिलेगा। जो सच में आनंदित है उसे तो शायद कोई सुख नहीं मिलेगा।

यह जो हमारी दृष्टि है कि इसी तरह हम अपना पूरा जीवन क्यों न बिता दें मूर्च्छित होकर, भूल कर! तब तो उचित हैः सिनेमा की भी क्या जरूरत है, एक आदमी सोया रहे जीवन भर। जीवन भर सोना कठिन है तो जीने की जरूरत ही क्या है? एक आदमी मर जाए और कब्र में सो जाए तो सारे दुख भूल जाएंगे। इसी प्रवृत्ति से सुसाइड की भावना पैदा होती है। इसी प्रवृत्ति से यह सिनेमा देखने वाला, और शराब पीने वाला, और संगीत में डूबने वाला यही आदमी अगर अपने तर्क की अंतिम सीमा तक पहुचं जाए तो वह कहेगाः जीने की जरूरत क्या है? जीने में दुख है तो मैं मरे जाता हूं। मैं मर जाता हूं। तो फिर उस मृत्यु से वापस लौटने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। यह सब सुसाइडल वृत्तियां हैं। जब भी हम जीवन को भूलना चाहते हैं, तब हम आत्मघाती हो जाते हैं।

जीवन का आनंद उसे भूलने में नहीं, उसे उसकी परिपूर्णता में जान लेने में हैं।

एक संगीतज्ञ हुआ बहुत बड़ा। उसकी अनूठी शर्तें हुआ करती थीं। वह एक राजमहल में अपने संगीत सुनाने को गया। और उसने कहा कि मैं एक ही शर्त पर अपनी वीणा बजाऊंगा कि जब मैं वीणा बजाऊं, तो सुनने वालों में से किसी का सिर न हिले। अगर कोई सिर हिला तो मैं वीणा बजाना बंद कर दूंगा। यह मेरी शर्त है। राजा भी अपनी ही तरह का था। उसने कहाः वीणा रोकने की कोई जरूरत नहीं, हम सिर को ही अलग करवा देंगे जो सिर हिलेगा। तुम वीणा मत रोकना, हमारे आदमी तैनात रहेंगे, जो सिर हिलेगा उस सिर को ही अलग कर देंगे।

संध्या सारे नगर में यह सूचना करवा दी गई कि जो लोग सुनने आएं, थोड़ समझ कर आएं; अगर संगीत सुनते वक्त कोई सिर हिला, तो वह अलग करवा दिया जाएगा। हजारों लोग उत्सुक थे कि उस रात संगीत सुनने आते, लाखों लोग उत्सुक थे। क्योंकि सभी लोग दुखी हैं। उतना बड़ा संगीतज्ञ गांव में आया था। सबको दुख के भूलने का एक अवसर था। कौन उसे चूकना चाहता था? लेकिन इतनी दूर तक उस सुख लेने को कोई राजी न था कि गर्दन कटवाए।

भूल से गर्दन हिल भी सकती है। और हो सकता है कि गर्दन संगीत के लिए न हिली हो, मक्खी बैठ गई हो गर्दन हिल गई हो; किसी और कारण से हिल गई हो। लेकिन राजा पागल था; फिर कोई इस बात में सुनवाई न होगी कि गर्दन किसलिए हिली थी। फिर गर्दन हिलना काफी हो जाएगा, तो लोग नहीं आए। लेकिन फिर भी दो-तीन सौ लोग आए। जो इस मूल्य पर भी सुख चाहते थे--जीवन देने के मूल्य पर, वे आए।

वीणा बजी, कोई घंटे भर तक लोग ऐसे बैठे रहे जैसे मूर्तियां हों। लोगों ने जैसे श्वास भी न ली हो, इतने डरे हुए थे। चारों तरफ नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक खड़े थे, किसी की भी गर्दन एक क्षण में अलग की जा सकती थी। दरवाजे बंद कर दिए गए थे, ताकि कोई भाग न जाए। घंटा बीता, दो घंटे बीते। आधी रात होने के करीब आ गई, और राजा भी हैरान हुआ! उसके सिपाही जो नंगी तलवारें लिए खड़े थे, वे भी हैरान हुए! दस-पंद्रह सिर धीरे-धीरे हिलने लगे। संख्या और बढ़ी, रात पूरी होते-होते कोई चालीस-पचास सिर हिल गए थे। वे पचास लोग पकड़ के बुलवा लिए गए। और राजा ने उस संगीतज्ञ को कहाः इनकी गर्दन अलग करवा दें?

उस संगीतज्ञ ने कहाः नहीं, मैंने यह शर्त बहुत और अर्थों से रखी थी। अब यही वे लोग हैं जो मेरे संगीत को सुनने के सच्चे अधिकारी हैं। कल ये ही लोग सिर्फ आ सकेंगे। राजा ने उन लोगों से कहाः ठीक है कि संगीतज्ञ की शर्त का यह अर्थ रहा हो, लेकिन तुम्हें तो यह पता न था। पागलों तुमने गर्दनें क्यों हिलाईं? तो उन आदमियों ने कहाः जब तक हम मौजूद थे, तब तक गर्दन नहीं हिली। लेकिन जब हम गैर-मौजूद हो गए, फिर का हमें कोई पता नहीं। हमने गर्दन नहीं हिलाई, गर्दन हिली होगी। लेकिन जब तक हमें समझ थी, होश था, तब तक हम गर्दन को सम्हाले रहे। फिर एक घड़ी आ गई होगी, जब हम बेहोश हो गए। हमें फिर कोई भी पता नहीं है। तो भला आप हमारी गर्दनें कटवा लें, लेकिन कसूरवार हम नहीं हैं। क्योंकि हम मौजूद ही नहीं थे, हम बेहोश थे। अपने होश में हमने गर्दन नहीं हिलाई है।

इतनी बेहोशी संगीत से पैदा हो सकती है? जरूर हो सकती है। मनुष्य के जीवन में बेहोशी के बहुत रास्ते हैं। जितनी इंद्रियां हैं उतने ही बेहोश होने के रास्ते भी हैं। प्रत्येक इंद्री का बेहोश होने का अपना रास्ता है। उस इंद्री पर, जैसे कान पर ध्वनियों के द्वारा बेहोशी लाई जा सकती है। और वह बेहोशी पूरे चित्त में फैल जाएगी। अगर इस तरह के स्वर और इस तरह की ध्वनियां कान पर फेंकी जाएं कि कान में जो सचेतना है, जो अवेयरनेस है वह शिथिल हो जाए, तो धीरे-धीरे कान तो बेहोश होगा उसके साथ पूरा चित्त बेहोश हो जाएगा।

क्योंकि कान के पास ही पूरा चित्त इकट्ठा हो जाएगा जब ध्वनियों को सुनेगा तो। कान बेहोश होगा उसके साथ पूरा चित्त भी बेहोश हो जाएगा। आंखें बेहोश करवा सकती हैं। सौंदर्य देख कर आंखें बेहोश हो सकती हैं। आंखें बेहोश हो जाएं, पीछे पूरा चित्त बेहोश हो जाएगा। चित्त को बेहोश करने के उतने ही मार्ग हैं, जितनी इंद्रियां हैं।

और इस भांति अगर हम बेहोश हो जाएं, होश में लौटने पर लगेगा कितना अच्छा हुआ। क्योंकि इस बीच किसी भी दुख का कोई पता नहीं चला। कोई चिंता न थी, कोई एंजायटी न थी; कोई पीड़ा न थी, कोई कष्ट न था; कोई दुख न था, कोई समस्या न थी--नहीं थी, क्योंकि आप ही नहीं थे। आप होते तो ये सारी चीजें होतीं। आप गैर-मौजूद थे इसलिए कोई चिंता न थी, कोई दुख न था, कोई समस्या न थी। दुख का न होना नहीं हुआ था, लेकिन दुख के प्रति जो होश चाहिए वह बेहोश हो गया था। इसलिए उसका कोई पता नहीं चल रहा था। इसे सुख जो लोग समझ लेते हैं वे भूल में पड़ जाते हैं। उनका जीवन एक बेहोशी में बीत जाता है। और आनंद से वे सदा के लिए अपरिचित रह जाते हैं।

तो आप पूछते हैंः "सत्य की खोज की जरूरत क्या है?"

सत्य की खोज की जरूरत इसलिए है कि उसके बिना आनंद की कोई उपलब्धि न कभी किसी को हुई है और न हो सकती है। अगर कोई यह पूछने लगेः आनंद की खोज की भी जरूरत क्या है--तो थोड़ी कठिनाई हो जाएगी। अब तक किसी आदमी ने वस्तुतः ऐसा प्रश्न पूछा नहीं है। दस हजार वर्षों में आदमी ने बहुत प्रश्न पूछे हैं,

लेकिन किसी आदमी ने यह नहीं पूछा कि आनंद की खोज की जरूरत क्या है? क्योंकि इस बात के पूछने का मतलब यह होगा कि हम दुख से तृप्त हैं। दुख से कोई भी तृप्त नहीं है।

अगर दुख से आप तृप्त होते तो सिनेमा भी क्यों जाते, संगीत भी क्यों सुनते? वह भी आनंद की एक खोज चल रही है, लेकिन गलत दिशा में। दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता है। हां, आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूर विलीन हो जाता है।

अंधेरे को भूलने से प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है। इस कमरे में अंधेरा भरा हो, मैं आंखें बंद करके बैठ जाऊं, और भूल जाऊं अंधेरे को तो भी कमरा अंधेरा ही रहेगा। लेकिन हां, दीया मैं जला लूं तो अंधेरा जरूर विलीन हो जाता है। दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता, लेकिन आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूरी विलीन हो जाता है।

मैं सोचता हूंः यह तो आप न पूछेंगे कि आनंद की खोज की जरूरत क्या? यह प्रश्न इसीलिए पूछ सके हैं कि सत्य को और आनंद को हम दो चीजें समझते हैं। नहीं; सत्य, आनंद या परमात्मा अलग-अलग बातें नहीं हैं। ये एक ही अनुभव को दिए गए अलग-अलग नाम हैं। जब कोई इस अनुभूति को उपलब्ध होता है तो उसे चाहे तो आनंद कहें, चाहे सत्य कहें। एक बात तय है कि हम जैसे हैं, वैसे होने से हम तृप्त नहीं हैं।

इसलिए खोज की जरूरत है। जो तृप्त है, उसे खोज की कोई भी जरूरत नहीं है। हम जो हैं उससे तृप्त नहीं हैं, हम जहां हैं वहां से हम तृप्त नहीं हैं। एक बेचैनी, एक पीड़ा है भीतर जो निरंतर कहे जा रही है कि कुछ गलत है, कुछ गड़बड़ है। कुछ ठीक नहीं मालूम होता है। वही बेचैनी है, जो कहती है--खोजो। उसे चाहे सत्य नाम दो, चाहे कोई और नाम दो।

और संगीत में भी और शराब में भी उसकी ही खोज चल रही है। खोज उसी की चल रही है, लेकिन गलत, भ्रांत दिशा में। और जब कोई आत्मा की दिशा में उसकी खोज को करता है तो वह ठीक और सम्यक दिशा में उसकी खोज शुरू हो जाती है। क्योंकि दुख को भूलने से आज तक कोई आनंद को उपलब्ध नहीं हो सका है। लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

जिन्होंने उस सत्य की थोड़ी सी भी झलक पा ली है उनके पूरे जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उनका सारा जीवन एक आनंद की, मंगल की वर्षा बन जाता है। फिर वे बाहर संगीत में भूलने नहीं जाते, क्योंकि उनके हृदय की वीणा पर एक संगीत बजने लगता है। फिर वे बाहर सुख की खोज में आंखें नहीं भटकाते हैं, क्योंकि उनके भीतर एक झरना फूट पड़ता है।

जो भीतर दुखी है वह बाहर सुख को खोजता है। और जो भीतर दुखी है वह सुख को पा कैसे सकेगा? लेकिन जो भीतर आनंद से भर जाता है, उसकी बाहर सुख की खोज बंद हो जाती है। क्योंकि जिसे वह खोजता था, वह उसके भीतर उसे उपलब्ध हो गया है।

एक भिखारी एक बहुत बड़ी महानगरी में मरा। वह जिस जगह बैठा हुआ रहा, तीस वर्षों तक जहां बैठ कर उसने भिक्षा मांगी थी, जहां एक-एक पैसे के लिए गिड़गिड़ाया था, उसके मर जाने पर उसकी लाश को म्युनिसिपल के कर्मचारी घसीट कर मरघट तक ले गए। उसके कपड़े, चिथड़ों में आग लगा दी गई, और मोहल्ले के लोगों ने कहाः तीस साल तक इस भिखमंगे ने इस जमीन को खराब और अपवित्र किया है, इसे थोड़ा खुदवा कर इसकी थोड़ी सी भूमि भी बदल दी जाए, थोड़ी मिट्टी बदल दी जाए। और वे हैरान रह गए, जब उन्होंने मिट्टी बदली तो जहां वह भिखारी बैठा रहा, वहीं नीचे खजाना गड़ा मिला। वह उसी खजाने पर तीस वर्षों तक

बैठा हुआ एक-एक पैसे के लिए भीख मांग रहा था। लेकिन उसे कोई पता न था कि उस भूमि पर जिस पर वह बैठा है, उसके नीचे खजाना भी हो सकता है।

यह किसी एक भिखारी की कहानी नहीं है, यह हर आदमी की कहानी है। हर आदमी जहां बैठा है, और जहां एक-एक पैसे के सुख के लिए गिड़गिड़ा रहा है, और मांग रहा है, और हाथ फैला रहा है--उसी जमीन पर, उसके ही नीचे बहुत बड़े आनंद के खजाने गड़े हुए हैं। फिर आपकी मर्जी, आपका मन न हो उन्हें खोदने का तो कोई आपको मजबूर नहीं कर सकता। आप गिड़गिड़ाए जाइए, भीख मांगे जाइए।

अगर उस भिखमंगे को जाकर मैंने कहा होताः मित्र गड़े हुए खजाने की खोज करो, और वह मुझसे कहताः क्या जरूरत है गड़े हुए खजाने के खोज की, मुझे काफी आनंद आ रहा है। भीख मांग लेता हूं, मुझे बहुत मजा आ रहा है। मैं क्यों... मैं तो ऐसी जिंदगी गुजार दूंगा, मैं क्यों खोज करूं गड़े हुए खजाने की? तो मैं भी उससे क्या कहता? कहता ठीक है, भीख मांगो।

लेकिन जो भीख मांग रहा है, वह कहे कि मुझे खजाने की कोई जरूरत नहीं, तो पागल है। नहीं तो भीख क्यों मांग रहा है। सिनेमा में और संगीत में सुख खोज रहा है, और कहे कि आनंद की खोज की मुझे जरूरत क्या है? तो वह पागल है। नहीं तो फिर सिनेमा, संगीत में किसकी भीख मांग रहा है, किसको खोज रहा है? इससे ज्यादा इस संबंध में कहने का कोई भी अर्थ नहीं है।

मैं समझता हूं मेरी बात आप तक पहुंच गई होगी। हम भीख मांगने वाले लोग हैं। और जब कोई हमें खजाने की खबर दे तो हमें विश्वास नहीं आता है। क्योंकि हम एक-एक पैसे की भीख मांगते रहे, खजाने पर विश्वास ही नहीं आता है कि खजाना भी हो सकता है। भीख मांगने वाला मन खजाने पर विश्वास नहीं कर पाता है। उसे खजाना मिल भी जाए तो वह यही सोचेगा, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं? उसे यह विश्वास नहीं आता कि मैं भीख मांगने वाला और मुझे खजाना भी मिल सकता है! इस बात को भुलाने के लिए वह यह कहना शुरू करता है कि जरूरत क्या है खजाना खोजने की? मैं तो अपनी भीख मांगने में मस्त हूं, मैं क्यों परेशान हो जाऊं? छोटी सी जिंदगी मिली है उसे मैं आनंद की खोज में क्यों गंवा दूं? तो फिर जिंदगी में और क्या करिएगा? अगर आनंद की खोज में भी जिंदगी गवाई जाती है, तो फिर कमाई किस खोज में जाएगी?

एक दूसरे मित्र ने, एक दूसरे मित्र ने पूछा हैः त्याग का अर्थ पाना है या छोड़ना?

साधारणतः त्याग से हमारे मन में यही खयाल उठता है, कुछ छोड़ना पड़ेगा। कुछ छोड़ना त्याग है। शब्द में यही प्रतिध्वनि है, यही अर्थ छिपा मालूम होता है। लेकिन मैं आपसे कहूंः इस जमीन पर कोई भी आदमी कभी छोड़ने को तैयार नहीं होता है, जब तक कि छोड़ने के पीछे कुछ पा न लिया गया हो। अगर एक आदमी अपने हाथ में कंकड़-पत्थर भरे हुए है, और अगर हम एक झोली खोल दें और हीरे-जवाहरात उसके सामने रख दें तो कंकड़-पत्थर छोड़ देगा।

क्योंकि हाथ खाली करने जरूरी हो जाएंगे। तभी हीरे-जवाहरात मुट्ठी में बांधे जा सकते हैं। हीरे-जवाहरात हाथ में आने को हो जाएं तो कंकड़-पत्थर छोड़ दिए जाते हैं। दुनिया कहेगी... वे लोग जो अभी भी कंकड़-पत्थर हाथ में लिए खड़े हैं, वे कहेंगेः कितना बड़ा त्यागी है। जिन कंकड़-पत्थरों को हम समेट रहे हैं, उसने छोड़ दिए हैं। लेकिन जिन्होंने हीरे-जवाहरात पा लिए हैं, वे कहेंगेः कितना समझदार है। कॉमनसेंस की बात है, इसमें छोड़ना-वोड़ना क्या है। उसके सामने हीरे-जवाहरात आ गए तो उसने कंकड़-पत्थर छोड़ दिए।

लोग कहते हैंः महावीर ने धन छोड़ा, परिवार छोड़ा, महल छोड़ा, राज्य छोड़ा। लोग कहते हैंः बुद्ध ने संपदा छोड़ी, साम्राज्य छोड़ा। लेकिन मैं आपसे कहता हूंः इसके पहले कि उन्होंने कुछ छोड़ा, पाने की कोई बहुत बड़ी झलक उनके प्राणों में भर गई। पाना पहले हो गया, छोड़ना पीछे आया। छोड़ हम तभी सकते हैं जब श्रेष्ठतर की उपलिब्ध शुरू हो जाए--तभी, अन्यथा कोई कभी नहीं छोड़ता है।

इसलिए त्याग बहुत ऊपर से देखने पर छोड़ना है, बहुत गहरे से देखने पर पाना है। पाना ही असली बात है वहां। लेकिन हम सारे लोगों को छोड़ना दिखाई पड़ता है। क्योंकि जो छोड़ा जाता है वह स्थूल है, जो पाया जाता है वह सूक्ष्म है। वह दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए हमें लगता है महावीर धन छोड़ रहे हैं, पत्नी छोड़ रहे हैं।

लेकिन महावीर परमात्मा को पा रहे हैं, ये हमें कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि हम पत्नियों को देखने वाले लोग, मकानों की नाप-जोख रखने वाले लोग, रुपये-पैसे का हिसाब रखने वाले लोग... जिसका हम हिसाब रखते हैं, वही हमें दिखाई पड़ता है कि उफ! कितना बड़ा त्याग कर रहे हैं महावीर! और महावीर वही कर रहे हैं जो हर आदमी रोज अपने घर के कचरे को बाहर फेंक कर, कर जाता है।

लेकिन अगर कचरे को प्रेम करने वाला कोई पागल हो तो वह सड़क पर हैरान हो जाएगा देख कर कि उफ! हद कर दी इस आदमी ने, अपने घर का कचरा बाहर फेंक दिया। कितना महान त्याग किया है! और अगर वह बहुत ही ज्यादा पागल हो तो उस आदमी की एक मूर्ति बना लेगा, और एक मंदिर बना लेगा और उसमें पूजा करने लगेगा कि यह आदमी महात्यागी है।

हम जो चीज पकड़े हुए हैं उसको किसी को भी छोड़ते देख कर हमें हैरानी और आश्चर्य होता है, क्योंकि हर एक का मापदंड हम ही हैं भीतर, हम अपने से तोलते हैं। जिन रुपयों के लिए हम पागल हैं उनको अगर कोई छोड़ देता है तो हम हैरान हो जाते हैं। और उसके भीतर जो उपलब्धि हुई है वह तो हमें दिखाई ही नहीं पड़ती। वह बहुत सूक्ष्म है। उसके लिए जो आंखें चाहिए देखने वाली वे हमारे पास नहीं हैं।

इसलिए दुनिया में वे लोग जिन्होंने सर्वाधिक पाया, हमें सर्वाधिक त्यागने वाले मालूम होते रहे हैं। हमने उनका आधा हिस्सा ही देखा है। हमने त्याग ही देखा है, उनकी उपलब्धि नहीं देखी। और इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया एक अजीब मुसीबत में पड़ गई और समाज एक बहुत गहरी कठिनाई में पड़ गया है। जिन लोगों ने यह त्याग देखा, और जिन लोगों को भीतर की उपलब्धि नहीं दिखाई पड़ी... अनेक लोग अनुकरण करने के लिए खुद भी त्याग करने में पड़ गए। बाहर का उन्होंने छोड़ दिया और भीतर का उन्हें कोई पता नहीं है। वे त्रिशंकु की भांति लटक गए। जो था वह छोड़ दिया, जो मिलने वाला था उसकी उन्हें कोई खबर नहीं है। तब उनका चित्त अत्यंत पीड़ा से भर गया हो तो आश्चर्य नहीं है।

हमारा तथाकथित साधु-संन्यासी ऐसी ही पीड़ा से भर जाता है। फिर न तो उसकी आंखों में शांति दिखाई पड़ती है, न उसके प्राणों में संगीत दिखाई पड़ता है। बल्कि उसका सारा जीवन क्रोध बन जाता है। क्रोध बन जाता है। क्योंकि जो छोड़ दिया उसकी पीड़ा भीतर रह गई, और जो नहीं मिला उसका अभाव भी भीतर रह गया। वह सब तरफ से अभावग्रस्त हो गया। तब वह क्रोध से भर जाए तो आश्चर्य नहीं है। मुनियों का क्रोध ऐसा ही है, आकस्मिक नहीं। और मैंने तो सुना है दक्षिण की एक भाषा में मुनि का अर्थ ही होता है--क्रोधी।

इतना क्रोध किया है मुनियों ने कि उस भाषा में मुनि का अर्थ ही क्रोधी हो गया। क्रोध आ जाएगा स्वभावतः जहां जीवन विफल हो जाएगा। अभाव से भर जाएगा, कुछ भी हाथ में न रहेगा। जो कंकड़-पत्थर थे, वे भी छूट गए; और हीरे-जवाहरात नहीं आए, मुट्ठी खाली रह गई; संसार छूट गया, और सत्य मिला नहीं--तो

प्राण क्रोध से न भर जाएंगे तो क्या होगा? इतना क्रोध आ जाएगा, इतनी जलन और इतनी आग पैदा हो जाएगी उसमें सब झुलस जाएगा, पूरा जीवन।

इसीलिए तो साधारणजनों के बीच भी कभी कोई आंखें मुस्कुराती दिखाई पड़ जाती हैं। साधारण जनों के बीच भी कभी चेहरे पर फूल की झलक दिखाई पड़ जाती है, लेकिन साधुओं के चेहरे पर नहीं। बिल्कुल नहीं, कभी नहीं। लेकिन महावीर तो अतिशय आनंद से भरे हुए थे, बुद्ध तो अतिशय आनंद से भरे हुए थे। जरूर कुछ फर्क है। हमने त्याग को समझने में कोई भूल कर दी है। हमने त्याग के अधूरे हिस्से को देखा है--छोड़ने वाले हिस्से को, और हमने पाने वाली दिशा का हमें कोई संकेत नहीं है। इसलिए मैं आपसे कहता हूंः त्याग को समझना उपलब्धि, छोड़ना तो सिर्फ बाई-प्रॉडक्ट है। अपने आप हो जाता है।

छोड़ने की कोशिश में मत पड़ना, अन्यथा जीवन एक रिक्तता बन जाएगी। एक, एक रेगिस्तान बन जाएगा। पाने की कोशिश जीवन में कोई विराटतर उतरे, प्रकाश उतरे--उसकी कोशिश, उसका प्रयत्न। जीवन किसी गहरे को पा ले उसकी आकांक्षा--उस दिशा में जो चलता है वह पा लेता है। और जिस दिन पाता है, उस दिन बहुत कुछ जरूर छूटता है। लेकिन वह छूटना तब एक पीड़ा नहीं होती, बल्कि वह छूटना एक निर्भार होने की तरह आता है। जैसे कोई बोझ उतर गया। जैसे पके पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं तो वृक्ष को कहीं भी पीड़ा नहीं होती। लेकिन कच्चे पत्ते जिस वृक्ष से छोड़ लिए जाते हैं, तोड़ लिए जाते हैं, पीछे पीड़ा और घाव हो जाता है।

जिस चित्त ने आत्मा की दिशा में कुछ पाया नहीं और पदार्थ की दिशा में छोड़ना शुरू कर दिया, वह अपने जीवन के वृक्ष से कच्चे पत्ते तोड़ रहा है। उसके पीछे घाव पैदा हो जाएंगे, दुख पैदा हो जाएंगे। और उस दुख का बदला वह सबसे लेगा। इसलिए साधु-संन्यासी संसार के प्रति गाली देते हुए मालूम पड़ते हैं। क्रोध से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। सबको नरक भेजने की आकांक्षा करते रहते हैं। खुद को स्वर्ग जाने का इंतजाम कर लिया है, शेष सब पापियों को नरक भेजने का रस लेते रहते हैं।

यह क्रोध है भीतर। सारी दुनिया से बदला लेना है उन घावों का जो उनके, उनके प्राणों पर बन गए हैं। अन्यथा, क्या कोई साधु किसी को पापी समझ सकता है? क्या कोई साधु किसी को नरक भेजने की योजना का विचार कर सकता है? क्या कोई साधु नरकों में जलाए जाने वाले लोगों, कीड़ों-मकोड़ों की सारी परिकल्पना करके शास्त्र लिख सकता है? इसमें क्या रस हो सकता है किसी साधु चित्त को? साधु चित्त तो सभी को स्वर्ग ले जाने की आकांक्षा से भरा होगा। नरक की कोई योजना साधु चित्त में नहीं हो सकती। फिर किन्होंने ये सारे नरक के कष्ट ईजाद किए हैं?

उन्हीं लोगों ने जिनके हाथ रिक्त हो गए हैं संसार से। इसलिए जिनके हाथ भरे हैं, उनके प्रति वे क्रोध से भरे हैं। उनसे बदला लेना चाहते हैं। और बदला लेने के लिए वे क्या करें? वह उनको पापी कह रहे हैं, कंडेम्न कर रहे हैं, निंदा कर रहे हैं, नरक भेज रहे हैं। इस तरह बदला ले रहे हैं, इस जन्म में नहीं ले सकेंगे तो अगले जन्म में लेने की योजना बना रहे हैं।

लेकिन जिसके हृदय में आनंद की किरण उतरी होगी, उसका हृदय तो सबके लिए शुभकामनाओं से भर जाएगा। उसके हृदय में तो किसी को भी बुरा देखने की संभावना नहीं रह जाएगी। ये जो हमारे त्याग का छोड़ना ही आधार बन गया, उसके कारण ये सारी बात पैदा हुई। और इसलिए जिन कौमों ने त्याग को छोड़ना समझा, वे दयनीय हो गईं। दीन-हीन हो गईं। उनके भीतर एक उदासी भर गई। जीवन के प्रति सारा रस खो गया। हम खुद ऐसी ही दुर्भाग्य से भरी कौमों में से एक हैं जिनके भीतर से सारा आनंद, सारा उल्लास छिन गया।

तो मैं यह नहीं कहता हूं कि संसार को छोड़ दें, मैं ये कहता हूंः परमात्मा को पाएं। और उस पाने में ही यह घटना अनायास घटित होगी कि जो व्यर्थ है वह छूटता चला जाएगा, छोड़ना नहीं पड़ेगा। जिस चीज को छोड़ना पड़ता है, उसमें कष्ट है; जो छूट जाती है, उसमें आनंद है।

एक छोटी सी कहानी कहूं उससे शायद मेरी बात खयाल में आ जाए। बहुत प्रीतिकर है मुझे वह कथा--बहुत पुरानी बहुत अर्थपूर्ण है।

एक पति जंगल से लौट रहा है, उसकी पत्नी उसके पीछे है। वे लकड़ियां काट कर आ रहे हैं, और पांच-सात दिन के भूखे हैं। और उनका नियम है कि वे लकड़िया काट लें और बेचें तो जो मिल जाए उसी से भोजन करते हैं। पांच-सात दिन पानी गिरता रहा और वे जंगल नहीं जा सके और उन्हें उपवास करना पड़ा है। पति भी थका-मांदा, टूटा-हारा लकड़ियां सिर पर ढोए चल रहा है, पत्नी पीछे घसीटती होगी। थोड़ी दूर वह भी लकड़ियों का बोझ लिए आती है। और पति ने देखा की राह के किनारे ही पगडंडी पर अशर्फियों से भरी हुई एक थैली पड़ी है। स्वर्ण अशर्फियां कुछ बाहर गिर गई हैं, कुछ थैली के भीतर हैं। उसके मन को एकदम से खयाल आया मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली, मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया। लेकिन पत्नी का क्या भरोसा? सात दिन की भूखी है, मन में लालच आ जाए, लोभ आ जाए। और सोचे कि उठा लें। न भी उठाए तो भी कोई बात नहीं, मन में भाव भी आ जाए तो व्यर्थ ही पाप होगा। उसने उन अशर्फियों को पास के ही एक गड्ढे में धकेल कर मिट्टी से ढंक दिया। लेकिन वह उठ भी न पाया था और मिट्टी से हाथ भी साफ न कर पाया था कि पत्नी आ गई। उसने पूछा, क्या करते हैं? क्या कर रहे हैं? झूठ नहीं बोलना है, इसका उसका नियम था। इसलिए सच बोलना पड़ा। उसने कहा कि यहां मैंने अशर्फियां पड़ी देखीं। सोचा कि मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया है, लेकिन कहीं तेरे मन में लोभ न आ जाए इसलिए उन्हें मिट्टी में ढांक दिया है, ताकि तुझे वे दिखाई न पड़ें। वह पत्नी हंसने लगी और उसने कहाः कैसे हैं आप? आपको स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है? कैसे हैं आप? मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म भी नहीं मालूम पड़ती।

ये दो आदमी हैं। इसमें पहला आदमी त्यागी है, उसने त्याग किया है स्वर्ण का। और जिसने त्याग किया है, उसे स्वर्ण दिखाई पड़ता रहेगा। क्योंकि जबरदस्ती अपने से छुड़ाया है। बल्कि उसे और ज्यादा होकर दिखाई पड़ता रहेगा। अगर उस रास्ते से कोई भोगी निकलता होता तो शायद वे स्वर्ण अशर्फियां उसे शायद दिखाई भी न पड़ती। लेकिन जिसने सोने को छोड़ा है, और जिसने मन के अपने सब तरफ से दीवाल बनाई हैं सोने के विरोध में उसे तो सोना एकदम दिखाई पड़ेगा।

सारी दुनिया में साधु अश्लील चित्रों के बड़े विरोध में होते हैं। आप सड़क से निकलते जाते हैं, आपको नहीं दिखाई पड़ते दीवाल पर अश्लील पोस्टर लगे हुए। उनको एकदम दिखाई पड़ते हैं। बाकी उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें वही-वही दिखाई पड़ते हैं। चित्त जिस चीज को जबरदस्ती छोड़ा है, वह बहुत जोर से आकर्षित करती है कि देखो मुझे।

एक मेरे एक मित्र अमरीका से आए और खजुराहो देखने गए। उन दिनों उस प्रदेश में एक शिक्षामंत्री थे, वे भी मेरे मित्र थे। वह शिक्षामंत्री उन अमरीकन युवक को, अमरीकन उस चित्रकार को लेकर खजुराहो के मंदिर और मूर्तियां दिखाने ले गए। लेकिन शिक्षा मंत्री के मन में पूरे समय डर था, अश्लील मूर्तियां हैं, नग्न मैथुन की मूर्तियां हैं। क्या सोचेगा ये अमरीकी युवक? क्या कहेगा कि कैसी गंदी है यह भारतीय संस्कृति, जिसकी इतनी बातें करते हैं, और ये मंदिर बनाते हैं! और हमारे चित्रों और हमारी फिल्मों की निंदा करते हैं, जो इनके सामने कुछ भी नहीं? क्या सोचेगा यह अमरीकी युवक? ऐसा वह शिक्षामंत्री मन में सोचते रहे।

सारी मूर्तियां, मंदिर दिखा कर वापस लौटते थे तो क्षमायाचना की उनसे, कहा कि माफ करना, यह हमारे देश की संस्कृति की मूल धारा नहीं हैं। (अस्पष्ट 39 : 42 प्रभाव है,)यह कोई हमारे मुल्क की केंद्रीय धारणा नहीं है कि हमारे सभी मंदिर ऐसे हों। ये तो कभी हर मुल्क में गलत लोग पैदा हो जाते हैं, उन गलत लोगों ने अपने भोग-विलास के लिए यह सब बना लिया होगा। ये अश्लील मूर्तियां हमारी प्रतीक नहीं हैं, हमारी प्रतिनिधि नहीं हैं। उस अमरीकी युवक ने कहाः क्या कहा, अश्लील? तो फिर मुझे फिर से जाकर देखना पड़ेगा। मुझे तो कोई अश्लीलता दिखाई न पड़ी, इतनी सुंदर, इतनी महिमायुक्त मूर्तियां मैंने कभी देखी नहीं। वह फिर वापस गया कि मुझे फिर से देखना पड़ेगा, क्या कहते हैं अश्लील? लेकिन इनका चित्त, इनका चित्त डरा हुआ, क्षमा याचना से भरा हुआ था। ये पूरे वक्त वहां परेशान ही रहे होंगे।

यह हमारे त्यागी का चित्त है। नैतिक पुरुष का चित्त है। जो जबरदस्ती चीजों को छोड़ता है तो फिर उसे वही-वही चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं, और सब दिखाई पड़नी बंद हो जाती हैं। उन्हें उन मूर्तियों में न तो सौंदर्य के दर्शन हुए, न उन मूर्तियों में कला के दर्शन हुए, न उन मूर्तियों का अनुपात उन्हें दिखाई पड़ा, न उन मूर्तियों में किए गए श्रम, न उन मूर्तियों में प्रकट किए गए भावों का उन्हें कोई दर्शन हुआ--उन्हें तो सिर्फ उन मूर्तियों में सेक्सुअलिटी दिखाई पड़ी, अश्लीलता दिखाई पड़ी। लेकिन वह जो चित्रकार आया था, वह दंग रह गया था, वह पागल हो गया था, वह दीवाना हो गया था--एक-एक मूर्ति अनूठी थी, और उसमें इतना सौंदर्य था, इतना भाव था, इतना अर्थ था कि किसको फुरसत थी कि उसमें सेक्सुअलिटी भी देखे, उसमें अश्लीलता भी देखे। उसने कहा मुझे फिर से जाने दें, आपने बड़ी नई बात कही। इस पर मेरा ध्यान नहीं गया। मैं फिर उसे जाकर देखूं।

लेकिन एक साधु को ले जाएं उसी मंदिर में तो वह आंखें बंद कर लेगा। उसे वहां जो दिखाई पड़ेगा वह घबड़ा देगा। वह क्या दिखाई पड़ेगा? जो मन में छिपा रहा है--वही, वही दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। वह पति त्यागी था, इसलिए उसे स्वर्ण दिखाई पड़ा। उस पत्नी के जीवन में एक मैच्योरिटी आई, एक परिपक्वता आई थी। उसने जीवन के किसी विराटतर सत्य को जाना था जो स्वर्णों का भी स्वर्ण है। उसके समक्ष सोना मिट्टी हो गया था। अब सोने के दिखाई पड़ने का कोई सवाल न था, न छोड़ने का कोई सवाल था। उसने कहा कैसे हो? पागल हो, मिट्टी पर मिट्टी डालते शर्म नहीं आती!

और विराटतर, और गहरे भी मूल्य हैं जीवन में जिनके समक्ष स्वर्ण मिट्टी हो जाता है। और जब मिट्टी हो जाता है तब फिर उसे छोड़ना नहीं पड़ता है, मिट्टी को कौन छोड़ता है? छूट जाती है। उसे कौन ढोता है? कोई नहीं ढोता है। जब तक वह स्वर्ण बना है तभी तक छोड़ने का भी सवाल है। इसलिए त्याग मेरी दृष्टि में छोड़ना नहीं है, पाना है। उस पाने के पीछे छोड़ना भी फलित होता है, लेकिन वह गौण है, और विचारणीय भी नहीं है। उसका अत्यधिक विचार हमारी त्याग की सारी दृष्टि को ही गलत कर दिया है। हमारा सारा धर्म छोड़ना ही छोड़ना, छोड़ना ही छोड़ना हो गया है। और जहां छोड़ना ही छोड़ना हो जाए वहां सब, सब जीवन रिक्त हो जाता है। सब जीवन रिक्त हो जाता है।

यह जो हमारे छोड़ने की दृष्टि है, उसने हमारे सारे जीवन को सूना और खाली कर दिया है। धर्म एक मरुस्थल की भांति दिखाई पड़ता है, फूलों से भरी हुई एक बगिया की भांति नहीं। उसमें फिर आनंद की पुलक नहीं है। सौंदर्य का रस नहीं है। उसमें अंतर्वीणा के कोई स्वर भी नहीं हैं। सब तोड़ देना है, सब छोड़ देना है। नहीं, छोड़ने की दृष्टि भ्रांत है। भूल भरी है। पाना है, सब पाना है। गहरे से गहरा जो जीवन में है उसे उपलब्ध करना है।

निश्चित ही जो जितने गहरे को उपलब्ध करेगा, उतने बाह्य को छोड़ता चला जाएगा। जिसे पहाड़ की यात्रा करनी हो उसे बोझ को कम कर लेना होता है। जितनी ऊंची चोटी चढ़नी हो उतना ही बोझ पीछे छोड़ देना होता है। एवरेस्ट पर जो आदमी पहुंचा, उसके पास कुछ भी नहीं था उसका। सब बोझ छोड़ देना पड़ा। सब बोझ छोड़ देना पड़ेगा। जमीन पर चलने के लिए बोझ ढोया जा सकता है, उतार उतरना हो तो और भी ज्यादा बोझ ढोया जा सकता है। लेकिन चढ़ाव चढ़ना हो तो बोझ कम होता जाता है, उसे करना नहीं पड़ता। ऊपर की चोटी पुकारने लगती है, और बोझ छूटने लगता है। ऊपर के शिखर बुलाने लगते हैं, और बोझ छूटने लगता है। क्योंकि ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं।

शिखर का आमंत्रण जिसने स्वीकार किया है उसे फिर बोझ के मोह को छोड़ देना पड़ता है। और इसमें कुछ टूटता नहीं, कोई पीड़ा नहीं होती। क्योंकि प्रत्येक बोझ का छोड़ना कदमों को निर्भार कर देता है। शक्तिशाली बना देता है। ऊपर उठने में समर्थ बना देता है। एक तरफ बोझ कम होता है, दूसरी तरफ उड़ने की क्षमता उपलब्ध होती चली जाती है। एक तरफ बोझ कम होता है, और कदम नये पर्वतों को उपलब्ध होने लगते हैं।

तो जिसने परमात्मा के पर्वत पर चढ़ने की आकांक्षा की हो, उससे अंधेरी घाटियां अपने आप छूट जाती हैं। जिसने सूरज की तरफ यात्रा शुरू की हो, उससे अंधेरे के रास्ते अपने आप छूट जाते हैं। जिसने सत्य की तरफ चलना चाहा है, असत्य उससे गिरता जाता है--जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से।

लेकिन जो इससे उलटी प्रक्रिया में लग गया है, किसी पर्वत पर तो जाता नहीं, जमीन पर जीता है, और बोझ छोड़ देता है; उससे कच्चे पत्ते टूटने शुरू हो जाते हैं। और उसमें इतनी पीड़ा और दुख पैदा होता है कि उसका जीवन एक नरक बन जाता है। और फिर इसका बदला वह सबसे लेता है। इसका बदला वह लेगा ही। इसका क्रोध, इसका प्रतिशोध वह सबसे भंजाएगा ही।

त्याग को सत्य जानना जब उसके भीतर आनंद की ज्योति-शिखा जलती हो। और झूठ जानना अगर उसके आस-पास क्रोध की अग्नि हो। त्याग को सच जानना अगर उसके भीतर से किसी असीम संगीत के स्वर सुनाई पड़ते हों। और झूठ जानना अगर उसके चारों तरफ क्रोध से उत्तप्त वाणी दिखाई पड़ती हो। मैं समझता हूं मेरी बात खयाल में आई होगी।

एक और अंतिम प्रश्न-चर्चा करूंगा, फिर कुछ और प्रश्न बच जाएंगे वह कल सुबह और परसों सुबह आपसे बात करूंगा।

पूछा हैः आप सब धर्मों के विरुद्ध हैं, तो क्या सब महापुरुष झूठे हैं या कि आप?

मैं निश्चिय ही सब धर्मों के विरोध में हूं, क्योंकि मैं धर्म के पक्ष में हूं। जिसे धर्म के पक्ष में होना है, उसे धर्मों के विरोध में होना पड़ेगा। धर्म एक है। हिंदू और मुसलमान, ईसाई और जैन इसलिए धर्म नहीं हो सकते। जहां अनेकता है, फिर वहां धर्म नहीं हो सकता। रिलीजंस के मैं विरोध में हूं, क्योंकि मैं रिलीजन के पक्ष में हूं।

धर्म जीवन के भीतर जो चैतन्य है, उसका विज्ञान है। पदार्थ का विज्ञान एक है। कैमिस्ट्री हिंदुओं की अलग होती है, मुसलमानों की अलग? फिजिक्स भारत की अलग और इंग्लैंड की अलग होती है? और गणित भारत का अलग और चीनियों का अलग होता है? नहीं, प्रकृति के नियम एक हैं। वे चीनी और भारतीय में भेद

नहीं करते। वे पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी में अंतर नहीं करते। प्रकृति की भाषा एक है--वह हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू में फर्क नहीं करती।

अगर प्रकृति के और पदार्थों के नियम एक हैं तो क्या परमात्मा के नियम अनेक हो सकते हैं? आत्मा के नियम अनेक हो सकते हैं? उसके नियम भी एक हैं। वे नियम भी युनिवर्सल हैं। उन नियमों को हम अब तक नहीं खोज पाए इसलिए कि ये हमारे धर्मों के अत्यधिक मोह ने धर्म को जन्मनें नहीं दिया। कोई हिंदू है, कोई जैन, कोई मुसलमान, कोई ईसाई। और वे सब इतने अतिशय रूप से किसी पंथ, किसी पथ, किसी शास्त्र, किसी शब्द से बंधे हैं--कि वे युनिवर्सल, सार्वलौकिक सत्य को देखने में समर्थ नहीं रह गए हैं। क्योंकि सार्वलौकिक सत्य हो सकता है उनके शास्त्र को कहीं-कहीं गलत छोड़ जाए। कहीं-कहीं गलत कर जाए। तो वे अपने शास्त्र के इतने पक्ष में हैं कि सत्य के पक्ष में नहीं हो सकते। इसलिए दुनिया के पंथों ने, दुनिया में सार्वलौकिक धर्म, युनिवर्सल रिलीजन को पैदा नहीं होने दिया।

मैं पांथिकता के विरोध में हूं। सांप्रदायिकता के विरोध में हूं, धर्म के विरोध में नहीं हूं।

धर्म के विरोध में तो कोई हो ही नहीं सकता है। क्योंकि जो चीज एक ही है उसके विरोध में नहीं हुआ जा सकता। विरोध में होते से दो चीजें हो जाएंगी। सत्य के विरोध में कोई भी नहीं हो सकता, सिद्धांतों के विरोध में हो सकता है। सत्य के विरोध में कोई भी नहीं हो सकता, शास्त्रों के विरोध में हो सकता है। तो मैं उस सत्य की, उस धर्म की आपसे बात कर रहा हूं--जो एक है, और एक ही हो सकता है।

इसलिए अनेक से जो हमारा बंधा हुआ चित्त है उसे मुक्त करना जरूरी है। और यह आपसे किसने कहा कि मैं महापुरुषों के विरुद्ध हूं? यह आपसे किसने कहा? यह आपसे किसने कह दिया कि मैं महापुरुषों के विरोध में हूं? नहीं, लेकिन एक बात के विरोध में मैं जरूर हूं। जब तक हम दुनिया में महापुरुष बनाए चले जाएंगे, तब तक छोटे पुरुष भी पैदा होते रहेंगे। वे बंद नहीं हो सकते। जब हम एक व्यक्ति को महान कहते हैं तो हम शेष सब को क्षुद्र और नीचा कह देते हैं। यह हमें दिखाई ही नहीं पड़ता कि एक आदमी के सम्मान में शेष सबका अपमान छिपा होता है। जब हम एक व्यक्ति को पूज्य बना देते हैं, तो शेष सबको... ! और जब हम एक की मंदिर में प्रतिष्ठा कर देते हैं, तो बाकी सबकी... !

ये महानताएं क्षुद्रताओं पर खड़ी हैं। अगर दुनिया से क्षुद्रताएं मिटानी हों तो स्मरण रखिए, महानताओं को भी विदा कर देना होगा। नहीं तो ये दोनों बातें साथ-साथ जिंदा रहेंगी। मैं महापुरुषों के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन मनुष्य के भीतर जो महान है, उसके पक्ष में हूं। और हर मनुष्य के भीतर महान छिपा है। किसी में प्रकट, किसी में अप्रकट। लेकिन जिसमें अप्रकट है उसे भी नीचा कहने का कोई कारण नहीं।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कथा कही है। पिछले जन्म में, उन्होंने अपने पिछले जन्मों की बहुत सी कथाएं कही हैं। उन्होंने कहा है कि एक जन्म में मुझे खबर मिली कि एक बहुत बड़ा बुद्ध पुरुष, एक दीपंकर बुद्ध नाम का व्यक्ति नगर में आ रहा है, तो मैं उसके पास गया। मैंने दीपंकर बुद्ध के जाकर चरण स्पर्श किए। और मैं खड़ा भी न हो पाया था कि मैं आश्चर्य से भर गया और मेरी समझ में न आया कि क्या हुआ? मैं खड़ा भी न हो पाया था कि दीपंकर बुद्ध झुके, और उन्होंने मेरे पैर पड़ लिए। तो बुद्ध ने कहाः मैं घबड़ाया और मैंने उनसे कहा, मैं अपके पैर पड़ूं यह तो ठीक, लेकिन आप मेरे पैर पड़ें... ! ये तो समझ में आने वाली बात न हुई।

तो दीपंकर ने कहा कि तुम्हें दिखाई पड़ता है कि मैं बुद्धपुरुष हूं, तुम अज्ञानी हो। लेकिन जिस दिन से मैंने ज्ञान पाया उस दिन से मुझे कोई अज्ञानी दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारे भीतर भी मैं उसी ज्योति को जलते देखता हूं, जिसे अपने भीतर। मैं उसी को प्रणाम कर रहा हूं। तुम मुझे नहीं दिखाई पड़ रहे, मुझे वही ज्योति दिखाई

पड़ रही है। एक दिन ऐसा आएगा कि तुमको भी तुम दिखाई न पड़ोगे, और वही ज्योति दिखाई पड़ेगी। लेकिन बुनियादी रूप से कोई फर्क नहीं है। एक वृक्ष खड़ा हुआ है, और उसके ही पास एक छोटा सा बीज पड़ा हुआ है। बीज और वृक्ष में कोई फर्क है? वृक्ष महान है, और बीज क्षुद्र है? किसने कहा?

और अगर बीज क्षुद्र है तो वृक्ष महान हो कैसे जाएगा? इसी बीज से जन्मेगा और बड़ा होगा और महान हो जाएगा! और क्षुद्र से जन्मेगा और महान हो जाएगा? नहीं अगर बीज क्षुद्र है तो फिर वृक्ष कभी महान नहीं हो सकता। और अगर वृक्ष महान है तो बीज अपने में सारी महानता लिए बैठा है। फर्क, फर्क केवल अभिव्यक्ति का है, महानता का नहीं। तो दुनिया में छोटे और बड़े लोग नहीं हैं, दुनिया में बीज और वृक्ष हैं। लेकिन, लेकिन बीज होना क्या कुछ बुरा होना है? और बीज ही अगर बुरा होगा, तो फिर, फिर वृक्ष भी भला नहीं हो सकता।

इसलिए मैं इस तरह की कैटेगरीज के, इस तरह के वर्गीकरण के विरोध में हूं कि फलां आदमी महान है और फलां आदमी छोटा और क्षुद्र है। इतना ही फर्क हैः कोई वृक्ष है, कोई बीज है। बीज पूरी गरिमा से भरा हुआ है, आज नहीं कल वृक्ष का जन्म होगा। महापुरुष और छोटे पुरुष, ऐसा समाज में वर्ग विभाजन नहीं चाहिए। हमने न केवल संपत्ति बांट ली है, हमने परमात्मा भी बांट लिया है; हमने न केवल गरीब और अमीर पैदा कर दिए हैं, हमने छोटे और बड़े आदमी भी पैदा कर दिए हैं।

कोई आदमी बड़ा नहीं है, क्योंकि कोई आदमी छोटा नहीं है। और इस सत्य को जब तक हम प्राण-प्राण तक नहीं पहुंचा दें, तब तक दुनिया में इक्के-दुक्के महापुरुष पैदा होते रहेंगे। लेकिन महान मनुष्यता का जन्म नहीं होगा। इक्के-दुक्के महापुरुषों का प्रश्न नहीं है, पूरा नगर गंदगी से भरा हो और उसमें एक फूल खिल जाए तो क्या करिएगा उस फूल का? उससे क्या होता है? क्या फर्क होता है? अभी तक ऐसे ही हुआ। समाज ने महान पुरुष पैदा किए लेकिन महान मनुष्यता अभी तक पैदा नहीं हो पाई है।

और जब तक हम इन इक्के-दुक्के महापुरुषों को ही आदर और श्रद्धा देते रहेंगे, और मनुष्य के भीतर समस्त मनुष्यता के भीतर छिपा हुआ जो महान तत्व है, उसको आदर न देंगे; तब तक दुनिया में दूसरे तरह की मनुष्यता का जन्म नहीं हो सकेगा। मैं नहीं चाहता कि कोई आदमी किसी की पूजा करे। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ता हैः जिसकी वह पूजा कर रहा है, वह उसके भीतर बैठा हुआ है। यह किसी महापुरुष के प्रति अनादर नहीं है। बल्कि समस्त के भीतर छिपा हुआ जो महान है--उसकी स्वीकृति है। इसमें किसी का अपमान और अनादर नहीं है।

और महावीर और बुद्ध इससे दुखी न होंगे कि आप भी महावीर और बुद्ध हो गए। इससे आनंदित होंगे, इससे प्रसन्न होंगे। इसी के लिए तो जीवन भर वे चेष्टा कर रहे हैं, दौड़ रहे हैं गांव-गांव, नगर-नगर कि--जो उनके भीतर जगा है, वह आपके भीतर जग आए। और आप क्या कर रहे हैं? आप उनकी पूजा कर रहे हैं। आप कह रहे हैं तुम महान हो, हम क्षुद्र हैं। हम ना-कुछ हैं, तुम सब कुछ हो। हम तो इसी लायक हैं कि तुम्हारे पैरों में पड़े रहें।

यह हमारी जो तरकीबें हैं, ये हमारे भीतर जो महानता सोई है उसे जगाने से बचने के उपाय हैं। तो हम एक महापुरुष को पकड़ लेते हैं उसकी पूजा करते हैं, और निपट जाते हैं। यह भूल जाते हैं कि महापुरुष जब हमारे बीच पैदा होता है तो वह हमारे बीच हमसे पूजा पाने को नहीं, बल्कि हर महापुरुष एक अर्थों में हमारे भीतर स्प्रेरणा, स्प्रतीती और आकांक्षा जगाने को कि--जो उसके भीतर विकसित हुआ है, वह हमारे भीतर भी विकसित हो सकता है।

मैं किसी महापुरुष के विरोध में क्यों होने लगा। मैं तो किसी छोटे पुरुष के विरोध में भी नहीं हूं। लेकिन यह सोचने का ढंग गलत है। एक दुनिया चाहिए जहां प्रत्येक के भीतर जो श्रेष्ठतर है वह विकसित हो, ऐसी दुनिया नहीं चाहिए जहां एकाध श्रेष्ठ व्यक्ति पैदा हो और शेष लोग सिर्फ उसकी पूजा करें, प्रार्थना करें, स्तुति करें। उसे महान कहें, और भगवान कहें। ऐसी दुनिया नहीं चाहिए। ऐसी दुनिया में हम जी चुके दस हजार वर्षों से। और उससे कोई हित नहीं हुआ। अब तो हमें सर्वजन के बीच, सबके भीतर जो छिपा है उसे ही, उसे ही आदर और सम्मान देना चाहिए, ताकि वह विकसित हो सके। और बहुत से प्रश्न रह गए, उनकी मैं कल सुबह, परसों चर्चा करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर जो परमात्मा छिपा है, उसे प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।